

७६. सुभौमचक्रवर्तिन आख्यानम्।

इन्द्रनागेन्द्रचन्द्रावर्क-समर्चितपदद्वयम्। नत्वा जिनं प्रवक्ष्येऽहं सुभौमेशस्य वृत्तकम् ॥१॥
 ईर्ष्यावति पुरे राजा कार्तवीर्यो गुणोज्ज्वलः। रेवती कामिनी तस्य तयोः पुत्रः सुभौमवाक् ॥२॥
 अष्टमश्चक्रवर्ती च तस्य पाकविधायकः। जातो विजयसेनाख्यो नाना भोजनयुक्तिवित् ॥३॥
 एकदा तेन भूपाय तस्मै सत्पायसाशनम्। दत्तमुष्णं प्रभोक्तुं च दग्धोसौ तेन चक्रभृत् ॥४॥
 तत्पायसं प्रकोपेन ततस्तेनैव चक्रिणा। क्षिप्त्वा तन्मस्तके शीघ्रं मारितः सूपकारकः ॥५॥
 मृत्वा विजयसेनोसौ भूत्वा क्षारसमुद्रके। ततो व्यन्तरदेवश्च ज्ञात्वा पूर्वप्रघट्टकम् ॥६॥
 कोपात्तापसरूपेण सुभौमस्यास्य चक्रिणः। नाना मृष्टफलान्युच्चैः समानीय प्रदत्तवान् ॥७॥
 तत्फलास्वादानात्तेन सम्प्रोक्तं चक्रवर्तिना। कुत्र सन्ति फलानीति महामृष्टानि तापस ॥८॥
 ततस्तेन प्रपंचेन नीत्वा तं फललम्पटम्। समुद्रे प्रकटीभूय प्रोक्तमित्थं च शत्रुणा ॥९॥
 रे रे दुष्ट ममप्राण-नाशकस्त्वं मदोद्धतः। क्व यासि त्वमिदानीं च हन्यतेऽत्र मया ध्रुवम् ॥१०॥

७६. सुभौम चक्रवर्ती की कथा

चारों प्रकार के देवों द्वारा जिनके चरण पूजे जाते हैं उन जिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार कर आठवें चक्रवर्ती सुभौम की कथा लिखी जाती है ॥१॥

सुभौम ईर्ष्यावान् शहर के राजा कार्तवीर्य की रानी रेवती के पुत्र थे। चक्रवर्ती का एक विजयसेन नाम का रसोइया था। एक दिन चक्रवर्ती जब भोजन करने को बैठे तब रसोइये ने उन्हें गरम-गरम खीर परोस दी। उसके खाने से चक्रवर्ती का मुँह जल गया। इससे उन्हें रसोइये पर बड़ा गुस्सा आया। गुस्से से उन्होंने खीर रखे गरम बरतन को ही उसके सिर पर दे मारा। उससे उसका सारा सिर जल गया। इसकी घोर वेदना से मरकर वह लवणसमुद्र में व्यन्तर देव हुआ। कु-अवधिज्ञान से अपने पूर्वभव की बात जानकर सुभौम चक्रवर्ती पर उसके गुस्से का पार न रहा। प्रतिहिंसा से उसका जी बे-चैन हो उठा। तब वह एक तापसी बनकर अच्छे-अच्छे सुन्दर फलों को अपने हाथ में लिए चक्रवर्ती के पास पहुँचा। फलों को उसने चक्रवर्ती को भेंट किया। चक्रवर्ती उन फलों को खाकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उस तापस से कहा-महाराज, ये फल तो बड़े ही मीठे हैं। आप ये फल कहाँ से लाये? और ये कहाँ मिलेंगे? तब उस व्यन्तर ने धोखा देकर चक्रवर्ती से कहा-समुद्र के बीच में एक छोटा सा टापू है। वहीं मेरा घर है। आप मुझ गरीब पर कृपा कर मेरे घर को पवित्र करें तो मैं आपको बहुत से ऐसे-ऐसे उत्तम और मीठे फल भेंट करूँगा। कारण वहाँ ऐसे फलों के बहुत बगीचे हैं। चक्रवर्ती लोभ में फँसकर व्यन्तर के फाँसे में आ गए और उसके साथ चल दिये। जब व्यन्तर उन्हें साथ लिए बीच समुद्र में पहुँचा तब अपने सच्चे स्वरूप में आ उसने बड़े गुस्से से चक्रवर्ती को कहा-पापी, जानता है कि मैं तुझे यहाँ क्यों लाया हूँ? यदि न जानता हो तो सुन-मैं तेरा जयसेन नाम का रसोइया था, तब तूने मुझे निर्दयता के साथ जलाकर मार डाला था। अब उसी का बदला लेने को मैं तुझे यहाँ लाया हूँ। बतला अब कहाँ जाएगा? जैसा किया उसका

यदा पञ्चनमस्काराँल्लिखित्वात्र जले द्रुतम्। पादेन स्पृशसि व्यक्तं तदा त्वं मुच्यते मया ॥११॥
तदासौ चक्रवर्ती च कृत्वा तत्कर्मनिन्दितम्। कुधीः प्राणक्षयाच्छीघ्रं सप्तमं नरकं गतः ॥१२॥
धिङ्मूढत्वमहो लोके लंपटत्वं हि धित्तराम्। अष्टमश्चक्रभृच्चापि यतोसौ कुगतिं ययौ ॥१३॥
विश्वासेन विहीनोसौ धर्मे श्रीमज्जिनेशिनाम्। भवेद्दुर्गतिभाक्प्राणी यथासौ चक्रवर्तिकः ॥१४॥
धन्यास्ते जगतां पूज्या येषां चित्ते जिनेशिनः। नित्यं वाक्यामृतानि स्युः शर्मकारीणि देहिनाम् ॥१५॥
सम्यक्त्वं त्रिजगद्धितं भवहरं शक्रादिभिः पूजितं नाना शर्मविधायकं गुणकरं स्वर्गापवर्गप्रदम्।
तद्भक्त्याष्टविधं जिनेन्द्रकथितं श्रित्वा च मुक्तिश्रिये चित्ते भव्यमतल्लिका गतभयं संभावयन्तु प्रियम् ॥१६॥

इति कथाकोशे सुभौमचक्रवर्तिन आख्यानं समाप्तम्।

फल भोगने को तैयार हो जा। तुझसे पापियों की ऐसी गति होनी ही चाहिए। पर सुन, अब भी एक उपाय है, जिससे तू बच सकता है और वह यह कि यदि तू पानी में पंच नमस्कार मन्त्र लिखकर उसे अपने पाँवों से मिटा दे तो तुझे मैं जीता छोड़ सकता हूँ। अपनी जान बचाने के लिए कौन किस काम को नहीं कर डालता? ॥२-११॥

वह भला है या बुरा इसके विचार करने की तो उसे जरूरत ही नहीं रहती। उसे तब पड़ी रहती है अपनी जान की। यही दशा चक्रवर्ती महाशय की हुई उन्होंने तब नहीं सोच पाया कि इस अनर्थ से मेरी क्या दुर्दशा होगी? उन्होंने उस व्यन्तर के कहे अनुसार झटपट जल में मंत्र लिख कर पाँव से उसे मिटा डाला। उनका मन्त्र मिटाना था कि व्यन्तर ने उन्हें मारकर समुद्र में फेंक दिया। इसका कारण यह हो सकता है कि मंत्र को पाँव से मिटाने के पहले व्यन्तर की हिम्मत चक्रवर्ती को मारने की इसलिए न पड़ी होगी कि जगत्पूज्य जिनेन्द्र भगवान् के भक्त को वह कैसे मारे या यह भी संभव था कि उस समय कोई जिनशासन का भक्त अन्य देव उसे इस अन्याय से रोककर चक्रवर्ती की रक्षा कर लेता और अब मंत्र को पाँवों से मिटा देने से चक्रवर्ती जिनधर्म का द्वेषी समझा गया और इसलिए व्यन्तर ने उसे मार डाला। मरकर इस पाप के फल से चक्रवर्ती सातवें नरक गया। उस मूर्खता को, उस लम्पटता को धिक्कार है जिससे चक्रवर्ती सारी पृथ्वी का सम्राट् दुर्गति में गया। जिसका जिन भगवान् के धर्म पर विश्वास नहीं होता उसे चक्रवर्ती की तरह कुगति में जाना पड़े तो इसमें आश्चर्य क्या? वे पुरुष धन्य हैं और वे ही सबके आदर पात्र हैं, जिनके हृदय में सुख देने वाले जिन वचन रूप अमृत का सदा स्रोत बहता रहता है। इन्हीं वचनों पर विश्वास करने को सम्यग्दर्शन कहते हैं। यह सम्यग्दर्शन जीवमात्र का हित करने वाला है, संसार भय मिटाने वाला है, नाना प्रकार के सुखों का देने वाला है, और मोक्ष प्राप्ति का मुख्य कारण है। देव, विद्याधर आदि सभी बड़े-बड़े पुरुष सम्यग्दर्शन की या उसके धारण करने वाले की पूजा करते हैं। यह गुणों का खजाना है। सम्यग्दृष्टि को किसी प्रकार की भय-बाधा नहीं होती। वह बड़ी सुख-शान्ति से रहता है। इसलिए जो सच्चे सुख की आशा रखते हैं उन्हें आठ अंग सहित इस पवित्र सम्यग्दर्शन का विश्वास के साथ पालन करना चाहिए ॥१२-१६॥

७७. शुभनृपतेराख्यानम्

प्रणम्य परमानन्दं श्रीजिनेन्द्रजगद्धितम्। शुभाख्यभूपतेर्विचित्रं चरित्रं विरतिप्रदम् ॥१॥
 मिथिलानगरे राजा शुभो राज्ञी मनोरमा। तयोर्देवरतिः पुत्रः संजातः सुगुणाकरः ॥२॥
 एकदा नगरे तत्र मुनीन्द्रो ज्ञानसंयुतः। नाम्ना देवगुरुधीमान्समायातः सुसंघभाक् ॥३॥
 तदा महीपतिः सोपि शुभो भव्यजनैः सह। नत्वा मुनिं जगत्पूज्यं धर्ममाकर्ण्य पृष्ठवान् ॥४॥
 अहो मुने क्व मे जन्म भविष्यति विचक्षण। तच्छ्रुत्वा स मुनिः प्राह सुधीर्देवगुरुः स्फुटम् ॥५॥
 निजवर्चो गृहे राजस्त्वं भविष्यसि पापतः। महाकृमिर्मुनीन्द्राणां मानसे न भयं क्वचित् ॥६॥
 नगर्याश्च प्रवेशे ते विट्प्रवेशो मुखे ध्रुवम्। छत्रभंगस्तथा विद्धि साभिज्ञानमिति स्फुटम् ॥७॥
 सप्तमे च दिने भूप विद्युत्पातेन ते क्षयः। भविष्यति भवेदत्र प्राणिनां पापतो न किम् ॥८॥
 पुरं प्रविशतश्चापि ततस्तस्य महीपतेः। रथाश्वचरणोद्घातान्मुखे गूथः प्रविष्टवान् ॥९॥
 महावायुप्रवेगेन छत्रभंगोभवत्तदा। दुष्टपापोदये जन्तोः किं किं न स्याद्विरूपकम् ॥१०॥

७७. शुभ राजा की कथा

संसार का हित करने वाले जिनेन्द्र भगवान् को प्रसन्नता पूर्वक नमस्कार कर शुभ नाम के राजा की कथा लिखी जाती है। मिथिला नगर के राजा शुभ की रानी मनोरमा के देवरति नाम का एक पुत्र था। देवरति गुणवान् और बुद्धिमान् था। किसी प्रकार का दोष या व्यसन उसे छू तक न गया था ॥१-२॥

एक दिन देवगुरु नाम के अवधिज्ञानी मुनिराज अपने संघ को साथ लिए मिथिला आए। शुभ राजा तब बहुत से भव्यजनों के साथ मुनि-पूजा के लिए गया। मुनिसंघ की सेवा-पूजा कर उसने धर्मोपदेश सुना। अन्त में उसने अपने भविष्य के सम्बन्ध का मुनिराज से प्रश्न किया-योगिराज, कृपाकर बतलाइए कि आगे मेरा जन्म कहाँ होगा? उत्तर में मुनिराज ने कहा-राजन् सुनिए-पाप कर्मों के उदय से तुम्हें आगे के जन्म में तुम्हारे ही पाखाने में एक बड़े कीड़े की देह प्राप्त होगी, शहर में घुसते समय तुम्हारे मुँह में विष्टा प्रवेश करेगा, तुम्हारा छत्रभंग होगा और आज के सातवें दिन बिजली गिरने से तुम्हारी मौत होगी। सच है-जीवों के पाप के उदय से सभी कुछ होता है। मुनिराज ने ये सब बातें राजा से बड़े निडर होकर कहीं और यह ठीक भी है कि योगियों के मन में किसी प्रकार का भय नहीं रहता। मुनि का शुभ के सम्बन्ध का भविष्य-कथन सच होने लगा। एक दिन बाहर से लौट कर जब वे शहर में घुसने लगे तब घोड़े के पाँवों की ठोकर से उड़े हुए थोड़े से विष्टा का अंश उनके मुँह में आ गिरा और यहाँ से वे थोड़े ही आगे बढ़ेंगे कि एक जोर की आँधी ने उनके छत्र को तोड़ डाला। सच है, पाप कर्मों के उदय से क्या नहीं होता। उन्होंने तब अपने पुत्र देवरति को बुलाकर कहा-बेटा, मेरे कोई ऐसा पापकर्म का उदय आया उससे मैं मरकर अपने पाखाने में पाँच रंग का कीड़ा होऊँगा, सो तुम उस समय मुझे मार डालना। इसलिए कि फिर मैं कोई अच्छी गति प्राप्त कर सकूँ। उक्त घटना को देखकर शुभ को यद्यपि यह एक तरह निश्चय-सा हो